गुप्तकाल में भू-राजस्व

मंदीप कुमार चौरसिया

यू०जी०सी०:-नेट

शोधार्थी

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

पटना विश्वविद्यालय,पटना

Email:-mandipraj90@gmail.com

Mob:-7004246954,8409277436

सार(**ABSTRACT**):-

प्राचीन भारत में भू-राजस्व ही राज्य के लिए धन संग्रह का स्थायी स्त्रोत था। गुप्त काल मे बड़े पैमाने पर ब्राह्मण आदि दानभोगियों को भूमि एवं ग्राम दान से भू-राजस्व की प्रथा को स्थायित्व प्राप्त हुई। इसी काल में राजस्व के इन सिद्धांत को सामंती स्वरूप प्रदान किया गया। इस प्रक्रिया से भारतीय राजस्व व्यवस्था में परत-दर-परत कर वसूली की घृणित प्रणाली का प्रारंभ हुआ।

गया तथा नालंदा के ताम्रपत्रों में समुद्रगुप्त द्वारा ब्राह्मणों को ग्रामों से कर के अतिरिक्त उपरिकर प्राप्त करने का भी अधिकर था। मुख्य रूप से अस्थायी निवासी उपरिकर दिया करते थे। संभवत: सम्पन्न किसान सोने के रूप में नकदकर देते थे जिसे 'हिरण्य' कहा जाता था। हिरण्य कृषि उत्पादन का कर था। फरीदपुर ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि भूमि पर एक ही मौसम में जोते जाने वाले खेत की भूमिकर की मात्रा 1/16 होती थी। भुतोवात प्रत्याय एक ऐसा कर था जो संभवत: देश में उगनेवाली तथा बाहर से आनेवाली नशीली वस्तुओं पर लगाया जाता था।

फह्यिान के अनुसार कृषक कृषि उत्पादन का एक भाग कर के रूप में देते थे। भू-राजस्व वही लोग चुकाते थे जो राजा की जमीन जोतते थे। राज्य

स्वतंत्र किसानों पर कर लगाकर अपना प्रभुत्व कायम रखते थे। राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत विविध भूमि कर थे, जिसमें 'भाग' सबसे प्रमुख कर था। जिसका मुख्य स्त्रोत कृषि उत्पादनल से था। सर्वप्रथम इसका प्रयोग कौटिल्य ने किया था। गुप्त सामंतों के कुछ अभिलेखों में भूत-प्रत्याय शब्द का उल्लेख मिलता है। जिसकी व्याख्या अल्तेकर ने अस्तित्व मे आनेवाली वस्तु पर कर से की है। अन्य करों में दिव्या, मेया, धन्या आदि भी था।

प्राचीन भारत के इतिहास में गुप्तकाल को हम स्वर्णकाल के नाम से भी जानते है। यह गुप्तकाल के समय में हरेक क्षेत्र मे हुई प्रगति का ही फल था। इस काल में एक सामंती प्रथा का भी प्रचलन चला, जिसके चलते सामंतो को राजा के परामर्श अनुसार भूमि अनुदान देने का कानुनी अधिकार प्राप्त हुआ। इस काल में भू-राजस्व ही राज्य के लिए धन संग्रह का सर्वाधिक स्थायी स्त्रोत था। गुप्त काल में बडे पैमाने पर ब्राम्हण आदि दानभोगियों को भूमि एवं ग्राम दान से भू-राजस्व की प्रथा प्रभावित हुई।[1] सामंतवादी प्रक्रिया से भारतीय राजस्व-व्यवस्था में परत-दर-परत कर वसुली की घृणित प्रणाली का प्रारंभ हुआ। इसके फलस्वरूप मानव-मुल्यो को नकारते हुए सामंती शोषण की निष्ठुर प्रथा का आविर्भाव गुप्तकाल से प्रारंभ हुआ।

गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था के पुरोधागण करो को राजा के द्वारा प्रजा के संरक्षण का प्रतिदान मानते थे।[2] करो की वसुली विभिन्न क्षेत्रो से होती थी जहाँ से वे कर वसुलते थे जैसे सीमा शुल्क सीमा के नगरो से वसुला जाता था। वस्तुओ पर लगे शुल्क को उगाही बाजारो में करते थे। गाँवो और शहरो में स्थानीय उत्पादन पर कर वसुला जाता था। कर राजा का वेतन माना जाता था। जिसके कई स्त्रोत थे जिनसे ये वसुले जाते थे। ये है-गोचर भूमि, चर्म, नमक, कोष्टागार, समस्त भूगर्भ संपदा, काष्ठागार, खाने आदि इन पर राजकीय अधिकार होता था।[3]

करो के विषय में इस काल में बहुत कम ज्ञान मिलता है प्रमुख रूप से भूमि कर जिसे कही 'भागकर' कही 'भोगकर' कहा जाता था। इसकी मात्रा 16 से 25% उत्पादन का होता था। चुंगीकर भी एक महत्वपुर्ण कर था। इस काल मे कुछ राजस्व अधिकारियो का भी ज्ञान प्राप्त होता है। भूमि से संबंधित अधिकारी बंगाल में 'आयुक्तक' और गुजरात में विनियुक्तक कहे जाते

थे। ये भूमि का विक्रय कर सकते थे। भूमि का लेखा जोखा रखने वाला अधिकारी 'ग्राम अक्षपाटलाधिकृत' या 'देश-अक्षपटलाधिकृत' होता था। लिखने का कार्य करने वाले 'दिविर', 'कर्णिक', 'कायस्थ' कहलाते थे जो राजस्व कार्यालय मे रहते थे।[4]

दो प्रमुख भूमिकर 'उदरंग' और 'उपरिकर' का नाम आता है। यह नियमित कर था। लेकिन इन करो में किसानो को अपनी उपज का कितना हिस्सा देना पडता था, यह स्पष्ट नही है। संभवत: सम्पन्न किसान सोने के रूप मे नगद कर देते थे जिसे 'हिरण्य' कहा जाता था। हिरण्य कृषि उत्पादन का वह कर था जो द्रव्य में प्राप्त किया जाता था। धान्य अनाज में दिया जाने वाला कृषि उत्पादन कर हिरण्य कर को घोषाल ने हल की जोत के आधार पर निर्धारित कर माना है। गुप्त अभिलेखो में 'हरिण्य समुदायिक' शब्द का उल्लेख मिलता है यह निश्चय ही नकदी वसुलने वाला अधिकारी रहा होगा।[5]

मध्य एवं पश्चिम भारत में ग्रामवासियों से सरकारी सेना और अधिकारियो की सेवा के लिए जो बेगार कराया जाता था वह 'विष्टि' कहलाता था,जिसका मनु ने उल्लेख किया है।[6] ग्राम में कुऑ खुदवाना, राष्ट्र में सड़क बनवाने आदि के लिए भी 'विष्टि' कर लिया जाता था। इसकी मात्रा निश्चित होती थी। पशुओ पर भी कर लगाये जाते थे। चम्मक ताम्रपत्र अभिलेख में गाय, बैल आदि पर इस प्रकार के कर लगाने का उल्लेख मिलता है[7] भूतोवात प्रत्याय एक ऐसा कर था जो संभवत- देश में उगने वाली तथा बाहर से आनेवाली नशीली वस्तुओ पर लगाया जाता था।[8] फाहियान के अनुसर कृषक कृषि उत्पादन का एक भाग कर के रूप में देते थे।[9] कालांतर में कर-दाताओ की संख्या घटती गई। फाहियान के कथनानुसर 'भू-राजस्व वही लोग चुकाते थे जो राजा की जमीन जोतते थे।[10] राज्य स्वतंत्र किसानो पर कर लगाकर अपना प्रभुत्व कायम रखता था।

राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत विविध भूमि कर थे, जिनमे 'भाग्' सर्वप्रमुख था। यह कर, कम से कम गुप्त काल तक, खद्यान्न के रूप में ही लिया जाता था। अर्थशास्त्र में 'भाग' शब्द का प्रयोग कुछ अन्य करो के नाम के साथ राजा का हिस्सा बनाने के लिए किया गया है यथा उदक भाग, लवण भाग आदि। गुप्त अभिलेखों में 'भाग' शब्द प्राय: 'भोग' और 'कर' के साथ

'भाग भोगकर' अथवा 'भोगभागकर' संयुक्त रूप से मिलता है। 'भोग' शब्द मनुस्मृति में एक कर का नाम है। गुप्त कालीन समसमायिक कर में 'चाट भट प्रवेश दण्ड' का उल्सलेख है। चाटभट का अभिप्राय पुलिस से है। जब राजा या प्रमुख कर्मचारी राजकीय यात्रा पर निकलते थे तो उनके साथ पुलिस आदि भी होती थी। उनका व्यय पुरा करने के लिए वहाँ लोगो से यह कर लिया जाता था।[11] इसी काल में कर्मचारी वर्ग की जगह पर सामंतों का दानभागी वर्ग सक्रिय था, जिसमे ब्राहम्ण, क्षत्रिय, शासकवर्ग तथा कुछ अन्य लोग थे। करदाताओ में वैश्य, व्यापारी एवं सबसे नीचे शोषित-दलित मेहनतकशों का वर्ग था जो सर्वाधिक शुद्र थे। कर का अच्छा-खासा भाग बेगार भी था जो शोषण का सही प्रतीक था। श्रम-शोषण सबसे अधिक था। यह घृणित राजस्व-व्यवस्था आर्य या हिन्दु–संस्कृति की हृदयस्थली गंगा घाटी में फल-फुल रही थी जिसका प्रतिनिधित्व आज के तीन राज्य (मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं बिहार) करते है।

भू-राजस्व का मुख्य स्त्रोत कृषि उत्पादन से प्राप्त कर ही था जिसे कभी-कभी भाग कहा जाता था।[12] भूमि पर विशेष कर के लिए भाग शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कौटिल्य ने किया था।[13] भाग गुप्तकाल में लगाये जानेवाले प्रधान करो में एक था। रूद्रदायम के जुनागढ अभिलेख में राजकीय खजाना को बलि, शुल्क और भाग से भरने का निर्देश दिया गया है और सुदर्शन बांध का निर्माण जनता से बिना कोई कर, विष्टि और प्रणय लिए जाने का उल्लेख हुआ है।

इसके अलावा दुसरा महत्वपूर्ण कर बलि था जो प्राचीन राजकीय कर का नाम है। जिसका देना अथवा न देना प्रजा पर निर्भर नही था। अर्थशास्त्र के अनुसार बलि उत्पादन में से राजा का सामान्य हिस्सा होती थी।[14] मिलिन्दपन्हो के अनुसार बलि आपातकाल में लगाया जाने वाला कर था।[15] इसे धार्मिक कर के रूप में भी रखा गया है। प्राचीन भारतीय भू-राजस्व व्यवस्था में बलि शब्द का प्रयोग शताब्दियों पहले से ही होता आ रहा था। इन करो की तरह ही हिरण्य भू-राजस्व का एक अन्य रूप था। यु० एन० घोषाल ने हिरण्य को एक विशेष प्रकार का कर था जो व्यापारिक फसलो पर लगाया जाता था। गुप्त काल के राजकोषीय शब्दो में उपरिकर और उद्रंग महत्वपुर्ण है। इनका वर्णन सिर्फ गुप्तकाल के अभिलेखों में मिलता है। अल्टेकर के अनुसार उपरिकर भोग की

तरह ही एक प्रकार का कर था जिसमें कर वस्तु के रूप में दिया जाता था।[16] उद्रंग राजा के लिए उपज में से संग्रह किया जाने वाला कर था यह विचार साट्भट्कोषा ने व्यक्त किया है यह भाग जैसा नही था। उद्रंग शब्द का अर्थ पानी का कर था। लेकिन यह विचार सही नही लगता। महाराज जयनाथ के करीटलाई ताम्रपत्र (ई० सन् 493-494) में उपरिकर और उद्रंग को भाग भोग कर की तरह ही स्थान दिया गया है।[17] उद्रंग का अर्थ फसल मे से राजा का हिस्सा नही हो सकता। घोषाल के अनुसार उदरंगा स्थायी कास्तकारो से लिया जाने वाला कर था।[18]

गुप्त सामंतो के कुछ अभिलेखो में भूत-प्रत्याय का उल्लेख है। अल्टेकर ने इसकी व्याख्या अस्तित्व में आने वाली वस्तु कर से की है। इसके अनुसार यह राज्य में बनने वाली वस्तुओ पर लगने वाला कर था। अन्य अभिलेखो से जान पडता है कि कारीगरो को भी कुछ कर देना पड़ता था।[19] अन्य करो में दिव्या, मेया, धन्या आदि भी था। दिव्या का उल्लेख राजा व्याघ्रसेन के सुरत अभिलेख में मिलता है, जिसका अर्थ होता है- कुछ जिसे देना है। गुप्तकाल में पहले की तरह ही उत्पादन का 1/6 भाग राजा को दिया जाता था जिसे षड्भागिन कहा गया है।[20] कालीदास के अनुसार राजा भूमि के उत्पादन के छठे भाग का अधिकारी होता था। फाहियान के अनुसार गुप्तकाल के कर्मचारी वेतन भोगी थे, जैसे नहर खुदवाना, विद्यालय, बनवाना आदि। ब्राहम्णो को इसी में से राजहित के लिए अग्राहार दान भी दिया जाता था। आपातकाल के लिए राजा कुछ सम्पति को संचित करके रखता था। इसे 'व्यय-प्रत्यय' नाम दिया गया है।

अत: सभी बातो को ध्यान में रख कर कहा जा सकता है कि गुप्तकाल में सामंतवादी व्यवस्था का बडे पैमाने पर प्रसार हुआ। सामंती समाज में ब्राहम्णो एवं अन्य उच्च जातीय लोगो का वर्चस्व था। ब्राहम्णो को कई प्रकार के करो से छुट थी। निम्न वर्गीय लोगो को कई प्रकार के करो का भुगतान करना पडता था। एक तरह से देखा जाए तो गुप्तकाल के सामंतवादी शोषण की जो समाजिक संरचना की शुरूआत हुई, वह सदा के लिए भारतीय समाज में बरकरार रह गयी।

संदर्भ सूची:-

1.शर्मा,रामशरण(1992) : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, पृ० 305

2.नारद स्मृति, 18.48

3.सहाय, शिवस्वरूप(2004) : प्रचीन भारतीय शासन और विधि,नई दिल्ली, मोती लाल बनारसीदास, पृ० 361

4.वही, पृ० 361

5.वही, पृ० 361

6.मनुस्मृति, 7.138

7.सी० आई० आई० पार्ट 2, पृ० 238

8.अल्तेकर, ए० एस०: राष्ट्रकुट एण्ड देयर टाइम्स, पृ० 229

9.सहाय, शिवस्वरूप : पूवोक्त, पृ० 361

10.चौधरी, राधाकृष्ण(1986): प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, जानकी प्रकाशन, पटना, पृ० 139

11.फ्लीट, गप्ता इन्सक्रिप्सन, न०-23,26,28

12.झा, डी० एन०: रेवेन्यु सिस्टम इन पोस्ट मौर्या एण्ड गुप्ता टाइम्स, पृ० 360

13.सहाय, शिवस्वरूप: पुर्वोक्त, पृ० 360

14.घोषाल, यु० एन०: सम हिन्दू फिजिकल टर्म्स डिस्कस्ट, पृ० 203

15.मलिन्दपन्ह, पृ० 146

16.अल्तेकर, पुर्वोक्त : पृ० 216

17.सहाय, शिवस्वरूप : पूर्वोक्त : पृ० 363०

18.घोषाल, यू० एन० पूर्वोक्त : पृ० 210

19.सहाय, शिवस्वरूप पूर्वोक्त : पृ० 360,361

20.विष्णु स्मृति, 3.22